

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ४ अध्याय ३१: प्रचेताओं की कथा का उपसंहार

21 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



चौथे स्कन्ध के इस अन्तिम अध्याय में देवर्षि नारद प्रचेताओं को वह एक परम सत्य सिखाते हैं जो सम्पूर्ण ग्रन्थ का शिरोमणि है — कि जीवन तभी सार्थक है जब वह भगवान की प्रेममयी सेवा में लगे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

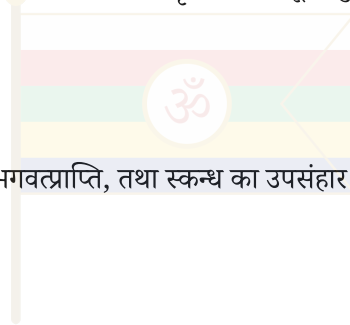
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विजडम् में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं के भीतर एक भक्तिमय यात्रा। यह इकतीसवाँ अध्याय चौथे स्कन्ध का अन्तिम अध्याय है, और यह प्रचेताओं की सुदीर्घ कथा को — तथा उसके साथ ही मैत्रेय ऋषि द्वारा विदुर को दिये गये सम्पूर्ण उपदेश को — उसकी पूर्णता तक पहुँचाता है। अपनी रानी मारिषा के साथ एक दीर्घ गृहस्थ-जीवन बिताने के पश्चात्, जिसमें

उन्होंने दक्ष (जो पूर्वजन्म से पुनः जन्मे) तथा अन्य सन्तानों को जन्म दिया, भगवान के पूर्व वचन को स्मरण कर प्रचेताओं के हृदय में विवेक जाग उठता है, और अपनी ही इच्छा से वे गृह और राज्य त्यागकर पश्चिमी समुद्र-तट के एक आश्रम में चले जाते हैं। वहाँ देवर्षि नारद उन्हें परमात्मा के गहन ध्यान में स्थित पाते हैं, और उन्हें वह एक सत्य सिखाते हैं जिसकी ओर सम्पूर्ण स्कन्ध बढ़ता आ रहा था — कि जन्म, आयु और हमारे समस्त कर्म तभी सार्थक हैं जब वे सर्वात्मा भगवान की सेवा में लगें; और जैसे वृक्ष की जड़ में जल सींचने से समूचा वृक्ष एक साथ पुष्ट होता है, वैसे ही एकमात्र भगवान की आराधना से सब कुछ तृप्त हो जाता है। उनकी भक्ति अब असीम गहरी हो जाने पर, प्रचेता उनके चरण-कमलों का ध्यान करते हैं और यथासमय स्वयं भगवान को प्राप्त कर लेते हैं। और वह महान् उपदेश भी विश्राम पाता है, जब विदुर शान्त हृदय से मैत्रेय से विदा लेते हैं। यह पूर्णता का अध्याय है — स्वायम्भुव मनु से लेकर दक्ष, ध्रुव, पृथु और प्रचेताओं तक की वंश-परम्परा को पूर्ण करता, और उस एक परामर्श पर स्कन्ध को विश्राम देता जो उसकी कही हर कथा का उत्तर है: भगवान की आराधना करो।

अध्याय-परिचय

- ग्रन्थ: श्रीमद्भगवत महापुराण
- स्कन्ध: ४ (चतुर्थ)
- अध्याय: ३१ (इकतीसवाँ), स्कन्ध का अन्तिम अध्याय
- मुख्य वक्ता: मैत्रेय ऋषि, विदुर को अपना उपदेश समाप्त करते हुए (जिसमें नारद के वचन उद्धृत हैं, और सूत/शुक का बाह्य आवरण)
- मुख्य श्रोता: विदुर
- मुख्य स्थल: प्रचेताओं का आश्रम, तथा मैत्रेय-विदुर संवाद का समापन
- केन्द्रीय विषय: प्रचेताओं को नारद का अन्तिम उपदेश, उनका संन्यास एवं भगवत्प्राप्ति, तथा स्कन्ध का उपसंहार
- मुख्य श्लोक-सीमा: स्कन्ध ४, अध्याय ३१, श्लोक १-३१
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भगवत महापुराण



पिछले अध्याय का सन्दर्भ

तीसवें अध्याय में बताया गया कि भगवान ने प्रचेताओं को दर्शन देकर वर प्रदान किया, और घर लौटकर उन्होंने वृक्षों की पालिता-कन्या मारिषा से विवाह किया। यह इकतीसवाँ अध्याय उनकी कथा को पूर्ण करता है: संसार में एक भरपूर जीवन बिताने के बाद विवेक जागता है और वे अपनी ही इच्छा से सब कुछ त्याग देते हैं, नारद उन्हें भक्ति में आगे उपदेश देते हैं, और यथासमय वे भगवान को प्राप्त कर लेते हैं — और सम्पूर्ण स्कन्ध अपने समापन तक पहुँचता है।

विवेक जागता है, और नारद आते हैं

मारिषा के साथ एक दीर्घ और भरपूर जीवन बिताने के पश्चात्, जिनसे प्रचेताओं ने दक्ष तथा अन्य सन्तानों को जन्म दिया जो संसार को बसाते, प्रचेताओं में अन्ततः पूर्ण ज्ञान का उदय हुआ: भगवान के अपने वचन का स्मरण मात्र ही पर्याप्त था। किसी गुरु की प्रतीक्षा किये बिना, उन्होंने प्रस्थान करने का निश्चय किया।

मैत्रेय उवाच

तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ।

स्मरन्त आत्मजे भार्या विसृज्य प्राव्रजन् गृहात् ॥ १ ॥

maitreya uvāca tata utpanna-vijñānā āśv adhokṣaja-bhāṣitam smaranta ātmaje bhāryām visṛjya prāvrajan gṛhāt

अर्थ: मैत्रेय ने आगे कहा: समय के साथ प्रचेताओं में पूर्ण ज्ञान का उदय हुआ; भगवान के अपने वचन का स्मरण कर उन्होंने अपनी पत्नी को पुत्र के संरक्षण में सौंपा और संन्यासी होकर घर से निकल पड़े। (स्कन्ध ४, अध्याय ३१, श्लोक १)

वे आगे पश्चिमी समुद्र-तट पर, महान् मुक्त ऋषि जाजलि के आश्रम में गये, और वहाँ प्रत्येक प्राणी को समान दृष्टि से देखने की साधना करते हुए, उन्होंने परमात्मा का अपना साक्षात्कार पूर्ण किया (श्लोक २)। वहीं, योग-समाधि में गहन होकर — प्राण, मन, वाणी और दृष्टि को वश में कर, स्थिर आसन में बैठकर, शरीर और इन्द्रियों को शान्त कर — उन्होंने अपनी आत्मा को उस एक निर्मल, परम ब्रह्म में स्थिर कर दिया। इसी अवस्था में देवर्षि नारद, जो देवताओं और असुरों दोनों से समान रूप से सम्मानित हैं, उनके पास आये।

तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो

जितासनान् शान्तसमानविग्रहान् ।

परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः

सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥ ३ ॥

tān nirjita-prāṇa-mano-vaco-dṛśo jītāsanān śānta-samāna-vigrahān pare 'male brahmaṇi yojitātmanaḥ surāsureḍyo dadṛśe sma nāradaḥ

अर्थ: देवताओं और असुरों दोनों के द्वारा वन्दित नारद ने प्रचेताओं को देखा — जिन्होंने प्राण, मन, वाणी और दृष्टि को जीत लिया था, आसन साध लिया था, शरीर को शान्त एवं सन्तुलित कर लिया था, और अपने आत्मा को परम निर्मल ब्रह्म में जोड़ दिया था। (स्कन्ध ४, अध्याय ३१, श्लोक ३)



देवताओं और असुरों दोनों के द्वारा पूजित देवर्षि नारद प्रचेताओं के पास आते हैं और उन्हें गहन ध्यान में स्थित पाते हैं, उनके आत्मा परम निर्मल ब्रह्म में जुड़े हुए (श्लोक १-८)।

वह एक सत्य: जीवन केवल भगवान में ही सार्थक

तब नारद ने उन्हें वह उपदेश दिया जो सम्पूर्ण स्कन्ध का शिरोमणि है। मनुष्य के जीवन का हर पक्ष — उसका जन्म लेना, उसके कर्म, उसकी आयु, उसका मन, उसकी वाणी — तभी सचमुच अर्थ रखता है जब इन सबके सहारे सर्वव्यापी स्वामी श्रीहरि की सेवा हो; शेष सब कुछ, चाहे कितना ही भव्य क्यों न हो, व्यर्थ में ही व्यय हो जाता है।

नारद उवाच

तज्जन्म तानि कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ।

नृणां येन हि विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥

*nārada uvāca taj janma tāni karmāṇi tad āyus tan mano vacaḥ nṛṇāṃ yena hi viśvātmā sevya-
te harir īśvaraḥ*

अर्थ: नारद ने कहा — मनुष्यों का वही जन्म, वे कर्म, वह आयु, वह मन और वह वाणी सार्थक है, जिसके द्वारा सर्वात्मा, स्वामी श्रीहरि की सेवा की जाती है। (स्कन्ध ४, अध्याय ३१, श्लोक ९)

और उन्होंने वह सुन्दर दृष्टान्त दिया जो तब से भक्तों का पथ-प्रदर्शक रहा है: वृक्ष की जड़ में जल दो, तो उसका तना, शाखाएँ और हर पत्ता एक साथ पोषण पाते हैं; प्राण को आहार दो, तो हर इन्द्रिय एक ही क्षण में तृप्त हो जाती है। ठीक वैसे ही, उन्होंने कहा, एकमात्र भगवान को अर्पित आराधना शेष सब कुछ और सबको प्राप्त कर उन्हें पूर्ण कर देती है।

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन
तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां
तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ १४ ॥

*yathā taror mūla-niṣecanena tṛpyanti tat-skandha-bhujopasākhāḥ prāṇopahārāc ca
yathendriyāṇāṁ tathaiva sarvārhaṇam acyutejyā*

अर्थ: जैसे वृक्ष की जड़ में जल सींचने से उसका तना, शाखाएँ और टहनियाँ पुष्ट होती हैं, और जैसे प्राण को आहार देने से समस्त इन्द्रियाँ तृप्त होती हैं, वैसे ही अच्युत भगवान की आराधना से सब कुछ पूजित हो जाता है। (स्कन्ध ४, अध्याय ३१, श्लोक १४)



नारद वह उपदेश देते हैं जो सम्पूर्ण स्कन्ध का शिरोमणि है: कि जीवन केवल भगवान की सेवा में ही सार्थक है, और उनकी आराधना से — जैसे वृक्ष की जड़ सींचने से — शेष सब कुछ एक साथ पुष्ट हो जाता है (श्लोक १-१९)।

भगवान की आराधना मात्र से सब कुछ क्यों तृप्त हो जाता है? नारद ने आगे इसका कारण बताया: यह सृष्टि भगवान से कभी सचमुच पृथक् नहीं है। जैसे सूर्य के ताप से उठी वर्षा पृथ्वी पर गिरकर यथासमय पुनः सूर्य में समा जाती है, और जैसे प्रत्येक प्राणी पृथ्वी से उत्पन्न होकर अन्ततः धूलि बनकर उसी में लौट जाता है, वैसे ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भगवान से उत्पन्न होकर, समय आने पर, पुनः उन्हीं में लीन हो जाता है (श्लोक १५)। सृष्टि इस प्रकार अपने मूल स्रोत से कभी पृथक् वस्तु नहीं है।

एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं
सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ।
यथासवो जाग्रति सुप्तशक्तयो
द्रव्यक्रियाज्ञानभिदाभ्रमात्ययः ॥ १६ ॥

*etat padam taj jagad-ātmanah param sakṛd vibhātam savitur yathā prabhā yathāsavo jāgrati
supta-śaktayo dravya-kriyā-jñāna-bhidā-bhramātyayaḥ*

अर्थ: जैसे सूर्य का प्रकाश, चाहे वह सम्पूर्ण आकाश को भर दे, सूर्य से कभी भिन्न नहीं होता, वैसे ही यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उस एक परम पुरुष से, जो इसका मूल आधार है, कभी भिन्न नहीं है; और जैसे इन्द्रियाँ निद्रा में लुप्त-सी प्रतीत होती हैं परन्तु उसी शरीर का अंग बनी रहती हैं, जागने की प्रतीक्षा में, वैसे ही सृष्टि केवल प्रकट और अप्रकट होती प्रतीत होती है, जबकि उसका स्रोत अपरिवर्तित और सदा एक-सा बना रहता है। (स्कन्ध ४, अध्याय ३१, श्लोक १६)

वृक्ष और जड़ के दृष्टान्त के पीछे यही तर्क है: भगवान की भक्ति परिवार, समाज अथवा देवताओं के प्रति अनेक कर्तव्यों में से एक कर्तव्य मात्र नहीं, अपितु उन सबके नीचे की वह एकमात्र जड़ है, क्योंकि हर कोई और हर वस्तु उन्हीं के प्रकाश से जीवित है। अध्ययन, योगाभ्यास, और यहाँ तक कि कठोरतम तपस्या भी, यदि भक्ति के इस स्पर्श के बिना की जाये, तो स्वयं अपने लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँचती (श्लोक ११-१३)।

वह भगवान जो अपने सेवकों से प्रेम करते हैं

नारद ने भगवान की अपनी उस कोमल महिमा की स्तुति की। वे आत्मतृप्त हैं और किसी पर निर्भर नहीं; स्वयं लक्ष्मी उनके पीछे-पीछे चलती हैं, और नरपति तथा देवगण व्यर्थ ही उनकी कृपा चाहते हैं — फिर भी वे अपना हृदय लक्ष्मी को नहीं, अपितु अपने भक्तों को देते हैं, अपने ही सेवकों के प्रेम से बँधे हुए। तब भला, नारद ने पूछा, कोई कृतज्ञ आत्मा ऐसे भगवान को कैसे त्याग सकती है?

श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च

द्विपदपतीन् विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः ।

न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः

कथममुमुद्विसृजेत्पुमान् कृतज्ञः ॥ २२ ॥

*śriyam anucaratīm tad-arthinaś ca dvipada-patīn vibudhānś ca yat sva-pūrṇaḥ na bhajati nija-
bhṛtya-varga-tantraḥ katham amum udvisiḥjet pumān kṛta-jñāḥ*

अर्थ: आत्मतृप्त एवं अनपेक्ष भगवान अपने पीछे चलने वाली लक्ष्मी की, अथवा उसे चाहने वाले नरपतियों और देवताओं की भी परवाह नहीं करते, क्योंकि वे अपने ही सेवकों के प्रेम से बँधे हुए हैं; तब कोई कृतज्ञ आत्मा उन्हें कैसे त्याग सकती है? (स्कन्ध ४, अध्याय ३१, श्लोक २२)



नारद के उपदेश से प्रबुद्ध होकर प्रचेता अपने गृह और उत्तराधिकारियों को उनके संरक्षण में सौंपते हैं और अनन्य भक्ति के जीवन के लिए राज्य त्याग देते हैं, अन्ततः भगवान को प्राप्त करते हुए (श्लोक २०-२८)।

प्रचेता प्रस्थान करते हैं, और उपदेश विश्राम पाता है

इस उपदेश से प्रचेताओं की भक्ति हृदय की गहराई तक और भी प्रगाढ़ हो गयी। अपना उपदेश पूर्ण कर नारद ब्रह्मलोक को लौट गये (श्लोक २३); और प्रचेता, अब निरन्तर भगवान के चरण-कमलों का ध्यान करते हुए, यथासमय उन्हीं को प्राप्त हो गये — वही लक्ष्य जिसके लिए उनका सम्पूर्ण संन्यास और आत्म-अन्वेषण का जीवन समर्पित था (श्लोक २४)। और उनकी कथा की पूर्णता के साथ, मैत्रेय द्वारा विदुर को दिया गया वह सम्पूर्ण महान् उपदेश — जो हमें दक्ष एवं सती, ध्रुव, पृथु और प्रचेताओं की कथाओं के भीतर से ले आया — अन्ततः अपने विश्राम को प्राप्त हुआ। विदुर, अपने हृदय को पूर्णतः शान्त पाकर, मैत्रेय को प्रणाम कर, उनसे विदा ले, अपने स्वजनों से मिलने चल पड़े। और यह आख्यान सब सुनने वालों के लिए एक वचन के साथ समाप्त होता है: श्रीहरि को अपना आत्मा तक अर्पित करने वाले उन राजाओं का यह वृत्तान्त सुनना ही दीर्घायु, धन, यश, कल्याण, शुभ अन्त और सच्ची समृद्धि पाने के समान है।

एतद्यः शृणुयाद्राजन् राज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ।

आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३१ ॥

etad yaḥ śṛṇuyād rājan rājñāṁ hary-arpitātmanām āyur dhanam yaśaḥ svasti gatim aiśvaryam āpnuyāt

अर्थ: हे राजन्! जो कोई श्रीहरि को अपना आत्मा अर्पित करने वाले उन राजाओं का यह वृत्तान्त सुनता है, वह दीर्घायु, धन, यश, कल्याण, शुभ गति और समृद्धि प्राप्त करता है। (स्कन्ध ४, अध्याय ३१, श्लोक ३१)



अपना प्रयोजन पूर्ण कर, वह महान् उपदेश विश्राम पाता है: विदुर, अपने हृदय को पूर्णतः शान्त पाकर, मैत्रेय ऋषि को प्रणाम करते हैं, उनसे विदा लेते हैं, और अपने स्वजनों से मिलने प्रस्थान करते हैं (श्लोक २९-३१)।

इस प्रकार इकतीसवाँ उपदेश, और उसके साथ सम्पूर्ण चतुर्थ स्कन्ध, अपने समापन को प्राप्त होता है — स्वायम्भुव मनु की पुत्रियों से लेकर, दक्ष, ध्रुव, पृथु और प्रचेताओं के होते हुए, वह सुदीर्घ वंश-परम्परा अन्ततः भक्ति की पूर्णता में समाप्त होती है। यह आख्यान पंचम स्कन्ध में महाराज प्रियव्रत की लीलाओं के साथ आगे बढ़ेगा।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

१. जीवन इसी से मापा जाता है कि वह भगवान की सेवा करता है या नहीं। नारद घोषित करते हैं कि जन्म, कर्म, आयु, मन और वाणी तभी सार्थक हैं जब वे श्रीहरि की सेवा में लगें। जीवन का मूल्य उसकी लम्बाई या भव्यता नहीं, अपितु उसकी भक्ति है (श्लोक ९)।
२. भगवान की आराधना से सब कुछ एक साथ पुष्ट होता है। जैसे जड़ सींचने से समूचा वृक्ष पोषित होता है, वैसे ही भगवान की सेवा प्रत्येक कर्तव्य को पूर्ण करती और प्रत्येक सम्बन्ध को कल्याणकारी बनाती है। भक्ति अनेक क्रियाओं में से एक नहीं, अपितु समस्त कल्याण की जड़ है (श्लोक १४)।
३. भगवान अपने भक्तों के प्रेम से बँधे हैं। आत्मतृप्त एवं अनपेक्ष होकर भी वे अपना हृदय लक्ष्मी या महानों को नहीं, अपने सेवकों को देते हैं। उनकी महिमा उन पर, जो उनसे प्रेम करते हैं, उनकी कोमलता में है (श्लोक २२)।
४. जब विवेक पक जाता है, तब हृदय स्वयं ही संसार को छोड़ देता है। प्रचेताओं ने त्याग के लिए किसी के कहने की प्रतीक्षा नहीं की: भगवान के वचन का स्मरण मात्र ही उन्हें किसी गुरु के आने से पहले घर और राज्य छोड़ने के लिए पर्याप्त था, और बाद में नारद को सुनना उनके इसी निश्चय को और गहरा करता गया, यहाँ तक कि उन्होंने स्वयं भगवान को प्राप्त कर लिया (श्लोक १-२, २४)।
५. इन पावन कथाओं को सुनना समृद्ध फल देता है। शुकदेव वचन देते हैं कि जो कोई श्रीहरि को अपनी आत्मा अर्पित करने वाले इन राजाओं का वृत्तान्त ग्रहण करता है, उसे दीर्घायु, धन, सुयश, कल्याण और परम गति प्राप्त होती है। यह पावन कथा स्वयं कृपा का साधन है (श्लोक ३१)।

एक भाक्तेमय चिन्तन

जैसे-जैसे चतुर्थ स्कन्ध अपने समापन को आता है, वह अपनी अनेक कथाओं को एक अकेले, सरल परामर्श में समेट लेता है, जिसे नारद प्रचेताओं से कहते हैं: कि जीवन तभी सार्थक है जब वह भगवान की सेवा करे। उन सबको पीछे मुड़कर देखिए जिनका हमने अनुसरण किया — दक्ष का अहंकार और मेल-मिलाप, ध्रुव की बाल-भक्ति, पृथु का न्यायपूर्ण शासन और अन्तिम समर्पण, पुरञ्जन का सुदीर्घ रूपक, प्रचेताओं की तपस्या — और देखिए कैसे हर धागा यहीं आकर विश्राम पाता है। जिन राजाओं ने अपने जीवन को अपने ही विषय में बनाना चाहा — अहंकार में दक्ष, निन्दा में वेन, भोगों में पुरञ्जन — उन्हें केवल बन्धन और शोक मिला; और जिन्होंने अपना जीवन भगवान को दे दिया — ध्रुव, पृथु, प्रचेता — उन्होंने मुक्ति और आनन्द पाया। नारद का वृक्ष का दृष्टान्त एक चित्र में समूची शिक्षा है: हम अपने जीवन की शाखाओं और पत्तियों को — अपने सुख, कर्तव्य और सम्बन्धों को — एक-एक कर सँवारने में इतना श्रम लगाते हैं, और सोचते रहते हैं कि वृक्ष फिर भी क्यों मुरझा रहा है; और भागवत धीरे से कहता है — *जड़ को सींचो*। सर्वात्मा भगवान को अपना प्रेम दो, और तुम्हारे जीवन की हर शाखा एक साथ पुष्ट हो जायेगी। यह असाधारण करुणा की शिक्षा है, क्योंकि इसका अर्थ है कि सर्वोच्च वस्तु और सर्वाधिक व्यावहारिक वस्तु एक ही हैं: भगवान से प्रेम करना अपने कर्तव्यों की उपेक्षा नहीं, अपितु उन सबको उनके मूल में पूर्ण करना है। और स्कन्ध का अन्त, उचित ही, किसी सिद्धान्त से नहीं, अपितु भक्ति में एक प्रस्थान से होता है, और इस वचन से कि इन कथाओं को श्रद्धा से केवल *सुनना* ही उसी परम कल्याण की ओर एक पग है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जड़ को सींचिए। अपने जीवन की उन सब शाखाओं के बीच जो ध्यान माँगती हैं — आपका काम, आपकी चिन्ताएँ, आपके सम्बन्ध, आपके अनेक कर्तव्य — कुछ क्षण निकालकर, इसके बदले, उस एक जड़ को सँवारिए जिससे वे सब जीवन पाती हैं: भगवान के प्रति आपका प्रेम। शान्त होकर बैठिए और उन्हें अपना समूचा हृदय इन शब्दों के साथ अर्पित कीजिए — “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय,” नारद के इस वचन पर विश्वास करते हुए कि इस जड़ को सींचने से हर शाखा एक साथ पुष्ट होती है। और चतुर्थ स्कन्ध के समापन की भावना में, अपने दिन का एक साधारण कर्तव्य सचेत रूप से भगवान के *लिए* कीजिए, सर्वात्मा की सेवा के रूप में, जिससे आपका कार्य भी पूजा बन जाये। अपने सम्पूर्ण जीवन को, चाहे कितना ही सरल रूप में, उनकी सेवा की ओर मोड़ना ही, अपनी छोटी-सी रीति में, उस एक परामर्श का उत्तर देना है जिसमें यह सम्पूर्ण स्कन्ध विश्राम पाता है।

उपसंहार

चतुर्थ स्कन्ध का इकतीसवाँ और अन्तिम उपदेश प्रचेताओं की कथा तथा मैत्रेय द्वारा विदुर को दिये गये सम्पूर्ण उपदेश को पूर्ण करता है। मारिषा के साथ एक दीर्घ जीवन के बाद, जिनसे उन्होंने दक्ष और अन्यो को जन्म दिया, प्रचेता अपने ही पक्व निश्चय से गृह और राज्य त्याग देते हैं, और पश्चिमी समुद्र-तट के एक आश्रम में नारद उन्हें परमात्मा के ध्यान में लीन पाते हैं। वे उन्हें वह शिक्षा देते हैं जिसकी ओर यह सम्पूर्ण स्कन्ध बढ़ता आ रहा था — कि हमारा जन्म लेना, जीना, सोचना, बोलना और हर कर्म करना उसी क्षण सफल होता है जब वह श्रीहरि की सेवा में अर्पित हो, और उनकी आराधना शेष सब कुछ एक साथ तृप्त कर देती है, जैसे जड़ में डाला गया जल हर शाखा को पोषण देता है। वे यह भी दर्शाते हैं कि ऐसा क्यों है — कि सम्पूर्ण सृष्टि अपने स्रोत से कभी पृथक् नहीं, जैसे सूर्य का प्रकाश सूर्य से कभी पृथक् नहीं — और उस भगवान की स्तुति करते हैं जो, आत्मतृप्त होकर भी, अपने सेवकों के प्रेम से बँधे हैं। इससे अभिभूत होकर, प्रचेता उनके चरणों का ध्यान करते हैं जब तक उन्हें प्राप्त नहीं कर लेते; और वह महान् संवाद यहीं विश्राम पा जाता है, विदुर शान्त हृदय से मैत्रेय के चरणों से विदा लेकर। स्कन्ध इस वचन के साथ समाप्त होता है कि भगवद्-समर्पित राजाओं का यह वृत्तान्त सुनना अपने आप में समृद्ध फल देता है: अपने जीवन की जड़ को भगवान के प्रेम से सींचना ही, एक ही आघात में, उसकी हर शाखा को पोषित कर देना है।

श्रीमद्भागवत का यह दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), चतुर्थ स्कन्ध, इकतीसवाँ उपदेश (चतुर्थ स्कन्ध का अन्तिम उपदेश)।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विजडम् • विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठावान् पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिये गये हैं और उनके अर्थ सारांश के रूप में। यह किसी एकल प्रकाशक के सतत अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से सम्बद्धता अथवा उसके समर्थन का कोई भाव नहीं है।



ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-4-chapter-31-the-conclusion-of-the-story-of-the-pracetas-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विजडम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट